

जाग्रत आलोचनात्मक विवेक

गोपेश्वर सिंह

दूधनाथ सिंह की नयी कृति 'महादेवी' – आलोचना की इतनी गम्भीर किताब, जो दिलचस्प भी हो और घनघोर रूप से पठनीय भी, इधर के वर्षों में मैंने नहीं पढ़ी। पढ़ने का कोई बोझिल दबाव नहीं, किसी पालमिकल नुस्खे का इस्तेमाल नहीं फिर भी पुस्तक गम्भीर और पठनीय है। आलोचना में अक्सर वास्तविक या काल्पनिक प्रतिपक्ष खड़ा करके आलोचनात्मक गोलाबारी के गर्दोगुबार के बीच अपने साहित्य नायक को प्रतिष्ठित करने की परम्परा रही है, लेकिन यहां ऐसा कुछ भी नहीं है। सकारात्मक सोच की सकारात्मक आलोचना कैसे लिखी जाती है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती यह पुस्तक हिन्दी आलोचना की बड़ी उपलब्धि है।

'महादेवी' परम्परित अर्थों में आलोचना पुस्तक नहीं है। इसमें गहन शोध कार्य भी है, आत्मीय संस्मरण भी और महादेवी के साहित्य का गम्भीर विश्लेषण भी। यह सिर्फ महोदवी और छायावाद तक या सिर्फ महादेवी के देशकाल तक सीमित पुस्तक भी नहीं है। इसमें महादेवी तो हैं ही, उनका पूरा परिवेश समाज, साहित्य और मानवीय सरोकारों को उज्ज्वल बनाने वाली वे सभी चिन्ताएं हैं जिनसे कोई भाषा, समाज और राष्ट्र बनता है। बिना किसी होहल्ले के यह पुस्तक हिन्दी आलोचना के रूढ़ ढांचे से भिन्न आलोचना का वह रूप गढ़ती है जो गम्भीर भी है, पठनीय भी। पेशेवर आलोचकों की लिखी आलोचना हो या आशोक वाजपेयी के प्रिय रचनाकारों की तथाकथित 'रचनात्मक आलोचना', ज्यादातर जगहों पर आलोचनात्मक सोच और ढांचे की जो एकरसता और ठसपन है, उसको यह पुस्तक एक झटके में तोड़ती है। चुपचाप। बिना किसी आरोप या तुमुल कोलाहल के। आलोचना ऐसी भी हो सकती है और ऐसी होनी चाहिए, यह पुस्तक पढ़ने के पूर्व मैंने सोचा नहीं था। मैंने यह भी नहीं सोचा था कि महादेवी जैसी अतिलक्षित रचनाकार पर अब कोई ऐसी आलोचना पुस्तक आयेगी जो अलक्षित तथ्यों, अर्थों, आयामों और विश्लेषणों को एक साथ समेटती हुई सचमुच में नयी हो। इसी अर्थ में मैंने कहा कि इधर के वर्षों में यह पुस्तक हिन्दी आलोचना की एक बड़ी उपलब्धि है। साथ ही महादेवी वर्मा पर लिखी आलोचना पुस्तकों के बीच 'सर्वश्रेष्ठ' की दावेदार भी।

'विरह' और 'रहस्यवाद' के आधार पर महादेवी की जो मूर्ति हिन्दी आलोचना ने प्रारम्भ में ही निर्मित कर दी, थोड़े से उलट फेर के साथ, वही मूर्ति हिन्दी पाठक के 'कामनसेंस' को हिस्सा बन गयी और लगभग अब भी बनी हुई है। इस मूर्ति को तोड़ कर महादेवी की नयी प्रगतिशील छवि गढ़ने का सार्थक आलोचनात्मक प्रयास किया रामविलास शर्मा ने, किन्तु वहां भी प्रगतिशील आलोचना की रूढ़ धारणाएं और वैज्ञानिक चेतना का अभाव आदि अंततः बाधक बना। नारी विमर्श के दौर में तो महोदवी अचानक महत्वपूर्ण हो उठीं और अतिरेकी विमर्शकारों के लिए उनका सब कुछ महत्वपूर्ण हो गया और उनकी साहित्यिक रचनात्मकता स्त्री विमर्श के इस्तेमाल की वस्तु हो गयी। मतलब यह कि महादेवी के वास्तविक व्यक्ति और रचनाकार को 'डिस्कवर' करने की जरूरत हिन्दी आलोचना में बनी रही। 'महादेवी' से यह जरूरत पूरी होती है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में क्रम में लेखक की महादेवी के प्रति आत्मीयता और उनके साहित्य की तैयारी देखते बनती है। लेकिन अतिरेक कहीं नहीं। समग्रता में धैर्य के साथ महादेवी के जीवन और साहित्य को कई तरह से उलट पलट कर वस्तुनिष्ठ तरीके से जो मूल्यांकन किया गया है, वह अत्यंत संतुलित है। महादेवी के व्यक्ति और रचनाकार की सीमाओं की कहीं अनदेखी नहीं, फिर भी पूरी पुस्तक आत्मीय वस्तुनिष्ठ विवेक का परिचय देती जान पड़ती है। प्यार तो रामचंद्र शुक्ल का भी तुलसीदास से है और रामविलास शर्मा का निराला से। उस प्यार के कारण तुलसी और निराला के कवि व्यक्तित्व के अनेक नये आयाम खुलते हैं, फिर भी लगता है कि दोनों के आलोचनात्मक विवेक की वस्तुनिष्ठता को तुलसी और निराला के प्रति उनका अतिशय प्यार कहीं न कहीं धूमिल करता है। लेकिन आश्चर्य है कि पेशेवर आलोचक न होने के बावजूद, दूधनाथ सिंह का आलोचनात्मक विवेक पुस्तक में शुरू से आखिर तक जाग्रत है। महादेवी के व्यक्तित्व और साहित्य की कमियों, कमजोरियों के लिए लेखक के भीतर कोई क्षमा भाव नहीं। उसे ढकने की कोई चालाकी नहीं। उसे जरूरत से अधिक खोल कर 'साहसी' कहलाने का 'वीर भाव' भी नहीं। महादेवी के जीवन, मौत, हंसी और एकांत के पीछे कई अनजाने अनछुए तथ्यों को लेखक ने खोज निकाला है।

लेखक जितना अपने कथ्य के प्रति सजग है, उतना ही आलोचना के ढांचे की रूढ़ि के प्रति भी। पुस्तक के 'उपकथन' में लेखक अपनी इस सजग रचनाशीलता की घोषणा पूरे आत्मविश्वास के साथ करता है तो उसमें तनिक भी दम्भ और बड़बोलापन नहीं लगता : *"साहित्य की और विधाओं की तरह आलोचना की पठनीयता भी जरूरी है। बाहरी वैचारिक लदान और विद्वता की झूठी ठसक और क्रूर अहमन्यताओं का जमाना गुजर चुका। ऐसी क्षणभंगुर आलोचनाएं हमेशा निरर्थ होती हैं। दरअसल किसी कविता, कला, विचार या लेखक के प्रति एक सहज उत्सुकता जगाना और उसे समझने का मार्ग प्रशस्त करना ही आलोचना का उद्देश्य है। आलोचना जिस तरह 'बचाव' नहीं उसी तरह 'हलाल की साजिश' भी नहीं है। वह किसी कलाकृति को समझने का एक समानांतर रूपक है।"*

महादेवी लिखते हुए दूधनाथ सिंह के सामने आलोचना के पीछे सक्रिय वैचारिक दृष्टि या धारणों की भूमिका साफ रही होगी और उनकी बनी बनायी निष्पत्तियां भी। इसलिए वे आलोचना की पुरानी सभी दृष्टियों— चाहे वे यथार्थवादी हों या रूपवादी— को अपूर्ण मान कर छोड़ते हैं और अपने लिए नया मार्ग चुनते हैं, जो पूर्व के उनके अपने आलोचनात्मक लेखन से भी आश्चर्यजनक ढंग से अलग है। 'महादेवी' में न तो पिछली प्रगतिशील आलोचना की 'यथार्थवाद' सम्बंधी रूढ़ समझ की आवृत्ति है और न रचनात्मक आलोचना के नाम पर व्यंग्य, विडम्बना, नियति आदि का आग्रह। पिछले आलोचनात्मक प्रत्ययों से, आश्चर्य है कि उत्तर आधुनिक दौर में लिखी जाने के बावजूद, यह पुस्तक उत्तर आधुनिक शब्दावलियों और धारणाओं के दबावों से भी मुक्त है। छायावादी कवयित्री पर केन्द्रित होने पर भी यह छायावाद की आलोचना (रामविलास शर्मा - नामवर सिंह आदि) की शब्दावलियों और आलोचना की आधारभूमियों की ओर भी जाने या अनजाने नहीं जाती। यह महादेवी के व्यक्ति और रचनाकार को सम्पूर्णता में समझने की निजी कोशिश है। एक तरह से महादेवी का निजी पाठ है जो घनघोर ढंग से सार्वजनिक भी है। यह महादेवी सम्बंधी पहले की आलोचना को परे रख कर ज्यादातर महादेवी को ही आधार बना कर लिखी गयी है, इस कारण ज्यादा विश्वसनीय, आकर्षक और पठनीय है।

दूधनाथ सिंह जब कहते हैं कि 'महोदवी इस देश की पहली मुक्त स्त्री हैं जिनके सिर पर आंचल है' (पृ.23) तो वे उस महादेवी को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसे हिन्दी पाठक ने देखा नहीं है। यह पुस्तक पढ़ने के बाद छायावादी चतुष्टय में चौथे नम्बर पर रखी हुई महादेवी अचानक समानांतर खड़ी विलक्षण व्यक्तित्व लगने लगती हैं। उनका व्यक्तित्व, उनकी कविता, उनका गद्य सब कुछ वैसा लगने लगता है, जैसा पहले नहीं था। उनकी वियोग भावना और रहस्य भावना का परम्परित अर्थ छूट जाता

है। उनका नया व्यक्तित्व सतह से ऊपर उठता हुआ दिखता है।

छायावाद की प्रारम्भ में जो आलोचना हुई, उसका एक बड़ा कारण अपने समय और समाज से उसके रिश्ते को लेकर था। बाद में छायावाद की जो आलोचना रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, रमेश चंद्र शाह आदि ने लिखी, उसमें बड़ी आलोचनात्मक उड़ान छायावादी कविता का अपने समय समाज से रिश्ता बनाने को ही थी। चाहे वह रिश्ता छोटा हो या बड़ा। प्रसाद, निराला और पंत के रिश्ते अपने समय समाज से आलोचकों ने बनाये। महादेवी का नहीं बनाया जा सका। उनकी कविता का वैसा रिश्ता अपने समाज से था भी नहीं। आलोचना ने एक सरल मार्ग निकाला। वे विरह और रहस्य के हवाले कर दी गयीं। इनसे इतर महादेवी की कविता क्या है? इसकी छानबीन किसी आलोचक ने नहीं की। क्योंकि यह आसान काम नहीं था। दूधनाथ सिंह के आलोचक के लिए महादेवी का यही पक्ष चुनौती भरा है और व्यापक अर्थों में प्रासंगिक भी। दूधनाथ सिंह ने लिखा है : “कोई जरूरी नहीं है कि अच्छी और बड़ी कविता का चूल अपने तत्कालीन समय और समाज में फिट बैठ ही जाये। बुरी कविता का तो एकदम बैठ जाता है। अच्छी कविता का बैठ भी सकता है, नहीं भी बैठ सकता। महादेवी की कविता का तो बिल्कुल नहीं बैठता। स्वतंत्रता आंदोलन से उनकी कविता का तुक किधर से मिलता है? महादेवी की कविताएं पढ़ते हुए यह बिल्कुल नहीं लगता कि वह स्वतंत्रता संघर्ष के सबसे खलबलाते दिनों (1930-1942) की उपज हैं। महादेवी की कविता एक भाव ध्वनि है। इतिहास और घटनाएं और रूप उसके लिए निरर्थक हैं। शास्त्र निरर्थक है। महादेवी की कविता के बिना छायावाद अपूर्ण है। प्रसाद, पंत, निराला अक्सर अपनी कविता को समय से मिलाने के लिए इधर उधर हाथ पांव मारते हैं, महादेवी टस से मस नहीं होतीं। फिर भी उनकी कविता समय के सिर चढ़ कर बोलती है। एक सीधी रेखा है जो समय के पूरे ग्लोब को काटती है।” (पृ. 29-30) इन पंक्तियों को पढ़ कर कोई भी कह सकता है कि इनमें महादेवी की कविता का नया आयाम, नये अर्थों में उद्घाटित होता है। उनकी कविताएं अपने समय के साथ उस तरह नहीं हैं, जैसे रचनाकार या आलोचक देखते दिखाते रहे हैं। यह एक तरह से, कविता की व्याख्या में जो यथार्थवादी समझ थी, उसका प्रत्याख्यान है।

लेकिन कवि जीवन और उसके समय से काट कर कविता को देखने दिखाने की नियति, विडम्बना आदि धारणाओं के साथ चलने वाली, जो गैर प्रगतिशील आलोचना थी (है), दूधनाथ सिंह की महादेवी सम्बंधी प्रस्तुत आलोचना उसका भी प्रत्याख्यान रचती है। महादेवी की कविता का सम्बंध उनके जीवन से भी है और समय से भी। मौन, प्रतीक्षा, हंसी, आशा निराशा आदि का सम्बंध महादेवी के जीवन से है, इसलिए दूधनाथ उनके जीवन को, उनकी दिनचर्या को, उनकी हंसी को, उनके मौन को, उनके एकांत को, उनके परिवार को, उनकी सामाजिक गतिविधियों सक्रियताओं को, उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं आदि को बार बार उलटते पलटते हैं और पढ़ते हैं। फिर रचते हैं। इन सबका मह. देवी के काव्य संसार को समझने में निहायत नये ढंग से प्रयोग करते हैं। यह सही है कि महादेवी की कविता समय सापेक्षता की जगह समय के ग्लोब को काटती हुई कविता है। दूधनाथ प्रगतिशील और आधुनिकतावादी आलोचनात्मक धारणाओं का न सिर्फ अतिक्रमण करते हैं और हिन्दी आलोचना को विकसित करते हैं, बल्कि उत्तर आधुनिक शब्दावलियों और पाठ विधियों का भी निषेध करते हैं और ठेठ देशीपन के साथ आधुनिक व्याख्या की राह निकालते हैं। महादेवी की कविता को जानने के लिए उनके जीवन को जानना क्यों जरूरी है? उनकी व्याख्या का उत्तर आधुनिक ढंग, महादेवी जैसी रचनाकार के लिए क्यों नाकाफी सा है? दूधनाथ सिंह के शब्दों में उत्तर है : “जो मात्र कलाकृति से ही संतुष्ट हो जाते हैं और उसके रचयिता के बारे में कुछ भी जानने को उत्सुक नहीं होते वे परम स्वार्थी होते हैं। अगर अवसर हो तो जानने की इस प्रबल इच्छा को दबाना परम मूर्खता है। आखिर हम टॉलस्टॉय या चार्ली चैप्लिन या प्रेमचंद या निराला की जीवनियां या आत्मलेखन क्यों पढ़ना चाहते हैं? क्योंकि एक रचना के पीछे के वास्तविक मन और मनःस्थिति के प्रति हम अत्यंत उत्सुक होते हैं। उससे बहुत सारे

ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं जो रचनाकार को निजी तौर पर जाने बिना सम्भव नहीं होते।”

‘महादेवी’ में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनका प्रयोग आमतौर से आलोचना की शब्दावली में नहीं मिलता। ‘लिखत पढ़त’, ‘विदोर विदोर कर’, ‘फेंट फाट’, ‘कपड़छान’, ‘लदान’, ‘खुसफैल’ आदि न जाने लोक व्यवहार के कितने शब्द हैं जो धड़ल्ले से इस आलोचना पुस्तक में व्यक्त हुए हैं। पुस्तक यदि दिलचस्प है, ठसपन से मुक्त है तो शब्द व्यवहार में इस तरह का लोकस्पर्श भी एक बड़ा कारण है। आध्यात्मिक कुहेलिका से ढंक कर की गयी आलोचकों की व्याख्या की जगह महादेवी के चित्रों और उनकी कविताओं की लौकिक व्याख्या भी महादेवी के अध्ययन को नया आयाम देकर पुस्तक को दिलचस्प बनाती है। लेखक के शब्द हैं : “महादेवी के चित्रों और कविताओं को लेकर एक और अहम सवाल है। अक्सर दिमाग में यह बात उठती है कि उनके द्वारा चित्रित स्त्रियों या कविताओं वाली स्त्री में जो एक पुरातनपंथिता है, जो एक उत्तर मध्यकालीन (रीतिकालीन) सुसंस्कृत सांस्कृतिक पिछड़ापन है, जो देह या अंतर्कथ्य का आवयविक सौष्ठव है, जो एक नायिकापन की छवि है, उसका क्या करें? ये सारे रेखांकन या वाश टेम्परा शैली में चित्रित जलरंगों की स्त्रियां, दीपक को मुख भाव से निहारती ऊर्ध्वमुखी एकाधिस्थ सुंदरी, लेटी हुई ‘अरुणा’ या दीप उठाये वह सनातन सी दिखने वाली स्त्री नायिका— इन सबका गुणधर्म क्या है? महादेवी में अद्भुत रूप से एक रीतिकालीन खनक भी है।... वह रीतिकालीन नायिका ही है जो अंधेरे में ही सही, छिप कर ही सही, अभिसार के लिए निकलती तो है। वही है, जो तुलसीदास कृत अनुसूया के सारे स्त्री अनुशासन को डरते डरते छिन्न भिन्न करती है।”

काव्य रचना की दुनिया में समस्यापूर्ति एक पूरी की पूरी काव्य संस्कृति है और इसके गम्भीर आशय हैं, यह इस पुस्तक को पढ़ कर मैंने जाना। अब तक तो हम समस्यापूर्ति वाली काव्य संस्कृति को कुछ हिकारत और कुछ कौतुहल भाव से देखने दिखाने के आदी रहे हैं। महादेवी जी का काव्यारम्भ समस्यापूर्ति वाली काव्य परम्परा में हुआ था। इसकी चर्चा करते हुए महादेवी का लेखक न सिर्फ समस्यापूर्ति की बारीकियों और उसके विस्तार में जाता है, बल्कि उसी के समानांतर जारी उर्दू शायरी में ‘तरह’ की बारीकियों और विस्तार में भी जाता है। महादेवी पर बात करते हुए छायावादी कवि तो सामने हैं ही, उर्दू के गालिब, फिराक, फ़ैज आदि भी हैं। और किन्चित्त विस्तार से हैं। और उर्दू शायरी को समझने की तमीज के साथ हैं। इसी तरह ‘महादेवी’ में सिर्फ उनकी कविताएं, उनका साहित्य, उनका जीवन, उनका ‘परिवार’ ही नहीं है, उनके चित्र भी हैं और उनकी बारीकियों की समझ की तमीज भी। साथ ही महादेवी के चित्रों और उनकी कविताओं का आपसी सम्बंध भी। महादेवी एकांतवास में रह कर रचने वाली रचनाकार नहीं हैं। उनके साथ प्रयाग महिला विद्यापीठ भी है, गांधी, जवाहर, राजेन्द्र प्रसाद और जयप्रकाश नारायण जैसे राष्ट्रीय नेताओं का सम्बंध साथ भी है। उनके साथ हैं, उनके द्वारा स्थापित अनेक संस्थाएं। गंगा और हिमालय में रमने वाली महादेवी हैं तो आसपास के आम गरीब लोगों से जुड़ने वाली महादेवी भी। यानी कि महादेवी के व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं। ‘महादेवी’ का लेखक उन सभी आयामों के विस्तार और बारीकी में जाता है। वह सिर्फ, उनकी ‘लिखत पढ़त’ की नयी और दिलचस्प व्याख्या भर नहीं करता। वह उन सभी आयामों में धीरज और सम्मान के साथ महादेवी को खोजता है। और उस खोज के बाद वह महादेवी का जो चित्र प्रस्तुत करता है, वह सिर्फ छायावाद की नहीं, सिर्फ हिन्दी की नहीं बल्कि राष्ट्रीय फलक पर प्रतिष्ठित बड़ी साहित्यिक शिखर का है। ऐसी शिखर का जिसकी चिन्ता के केन्द्र में सिर्फ साहित्य नहीं समाज, राष्ट्र, आमजन, पर्यावरण आदि भी हैं।

महादेवी के बहुआयामी व्यक्तित्व को खोजते रचते लेखक सिर्फ एक शोधकर्ता और व्याख्याकार आलोचक भर नहीं हैं। वह तो है ही, रचनात्मक गम्भीरता और जिम्मेदारी के साथ है लेकिन इसके साथ नष्ट होती गंगा, नष्ट होते हिमालय, नष्ट होते इलाहाबादी साहित्यिक माहौल, नष्ट होती जीवन की आध्यात्मिक धवलता की चिन्ता में हलकान होता हुआ और राक्षसी आकार लेते भोगवाद से लड़ता

हुआ लेखक भी है जो 'महादेवी' के पृष्ठों में अपनी सजग सक्रिय दृष्टि के साथ उपस्थित है।

हिन्दी समाज मान चुका है और महादेवी जी भी यही मानती रहीं या मानने का भ्रम बनाये रहीं कि 1907 ई. उनका जन्म वर्ष है। शोध के जरिये दूधनाथ सिंह प्रामाणिक आधार देते हैं कि उनका वास्तविक जन्म वर्ष 1902 है। निराला 'साहित्यकार संसद' से क्यों निकल भागे थे? महादेवी 'पथ के साथी' में यह बताती हैं कि उनके संन्यास का असली राज क्या है? असली राज था वहां की कैद से निकल भागना और मुक्त जीवन की आकांक्षा। महादेवी के व्यक्तिगत जीवन के कुछ अनजान पक्ष भी सामने आते हैं। उनके प्रणय की झीना आभास तो मिलता ही है, धर्म परिवर्तन या विदेश गमन द्वारा एकाकी जीवन से मुक्त होने के लिए पिता या दादा द्वारा दी गयी सलाह आदि का भी पता चलता है। महादेवी के जीवन में जो हंसी, एकांत, चुप्पी, सामाजिक सक्रियता आदि है उसके रहस्यों की भी गहन और आत्मीय छानबीन इसमें मिलती है। जवाहरलाल और उनकी पुत्री इंदिरा जी से जुड़ाव के बावजूद जयप्रकाश नारायण की विरोधी रैली के लिए जगह मुहैया करने में महादेवी क्षण भर भी नहीं हिचकती। यह उनकी सामाजिकता का दूसरा आयाम है, जिस पर इस पुस्तक के जरिये विस्तार से रोशनी पड़ती है। निष्कर्ष यह कि यह पुस्तक महादेवी के व्यक्तित्व और रचना संसार के अनेक नये आयामों को नये शोधपूर्ण तथ्यों के जरिये खोलती है।

'लौट आ, ओ धार' नामक पुस्तक दूधनाथ सिंह ने जब लिखी थी, तब उसकी पर्याप्त चर्चा हुई थी। चर्चा का कारण उसकी काव्यात्मक भाषा और बेबाक तेवर था। लेकिन उसी के साथ उसमें अपने आदरणीयजनों और मित्रों की जो निर्मम चीरफाड़ थी, वह भी चर्चा का कारण थी। उसमें किसी को उठाने और किसी को गिराने का कुछ 'वीरभाव' भी था। लेकिन 'महादेवी' में दूधनाथ सिंह 'लौट आ, ओ धार' वाली नकारात्मक भंगिमा से पूरी तरह मुक्त हैं। उसकी सकारात्मकता जैसे और सांद्र होकर 'महादेवी' में उतर आयी हो। कोई प्रतिपक्ष नहीं। किसी से हिसाब किताब चुकाने का शरारती रचनात्मक उद्यम नहीं। महादेवी को पढ़ कर और जीकर लिखी गयी यह पुस्तक लेखक का कद बहुत ऊंचा कर देती है। एक और फर्क है। 'लौट आ, ओ धार' मूलतः संस्मरण की किताब है। संस्मरण के साथ मूल्यांकन भी है। लेकिन मुख्य स्वर संस्मरण का है। 'महादेवी' मूलतः मूल्यांकन और आलोचना की किताब है, जिसे रचे जाने में संस्मरणों की भी मदद ली गयी है। संस्मरण महादेवी की व्याख्या और मूल्यांकन में मददगार हैं। किसी को झकझोरने, किसी को चिकोटी काटने के आधार नहीं।

भारतेन्दु से लेकर अब तक ज्यादातर रचनाकारों ने आलोचना भी लिखी है। उनमें से कुछ बहुत अच्छी आलोचना है। लेकिन मुझे याद नहीं कि हिन्दी में किसी कवि कथाकार ने किसी कवि लेखक पर 'महादेवी' जैसी गम्भीर और रचनात्मक पुस्तक लिखी है। यह महादेवी पर सर्वश्रेष्ठ आलोचना पुस्तक तो है ही, दूधनाथ सिंह की भी सर्वश्रेष्ठ आलोचना पुस्तक है। पर उससे भी बड़ी बात यह कि किसी रचनाकार द्वारा किसी रचनाकार पर हिन्दी में लिखी गयी अब तक की सर्वश्रेष्ठ आलोचना पुस्तक भी है।

महादेवी : दूधनाथ सिंह, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : रु. 600.00

मत

तद्भव-20 में शशांक की बेहतरीन कहानी प्रकाशित करने के लिए बधाई और धन्यवाद। वह बहुत महत्वपूर्ण कहानीकार हैं, यह उनकी 'तैयारी' से भी साबित होता है। महाश्वेता जी का 'एक ही जीवन' इस अंक को यादगार बनाता है। हिन्द स्वराज पर बहुत कुछ छपा है पर शताब्दी वर्ष में वीरेन्द्र कुमार बरनवाल बेजोड़ हैं। राजकुमार का आलेख 'आत्म और आत्मचरित' भी इस अंक की उपलब्धि कहा जायेगा। सुधीर पालीवाल, देहरादून, उ.प्र.

मुर्दहिया की पाचवां भाग पढ़ा। बेहद अद्भुत। बेहद मार्मिक। कई आत्मकथाएं पढ़ चुका हूं लेकिन इतनी

हृदयस्पर्शी नहीं। दलित जीवन की त्रासदी न सिर्फ तुलसी राम जी की है, अपितु उनका 'स्व' प्रक्रियागत रूप में उन सभी दलितों का भी है, जो लेखन नहीं कर सकते। तद्भव का 20वां अंक इतिहास, साहित्य और संस्कृति का समुच्चय बन पड़ा है। 'गणतंत्र' कहानी की प्रश्नाकुलता रघुवीर सहाय के 'अधिनायक' कविता की याद दिलाती है। लोकतंत्र का फासीवादीकरण कहानी का प्रतिपाद्य है। कहानी पढ़ कर प्रेमचंद के शिल्पविधान की याद आती है। रामकुमार तिवारी की कहानी 'रहने की जगह' अच्छी है। राजेश जोशी जी का वृत्तांत आत्मकथा लेखन की नयी परिभाषा गढ़ता है। राजेश जी पर और सामग्री प्रस्तुत करें। (क्योंकि उन पर ही मेरा काम चल रहा है)। बद्री जी का 'बहस' औपनिवेशिकता के वर्तमान संकट की पहचान करा कर हमें सोचने पर विवश करता है। 'निजामुद्दीन' देवी प्रसाद मिश्र की कविता शिल्पविधान में विनोद कुमार शुक्ल से चालू होकर गालिब तक पहुंचती है। कविता का पूरा आख्यान बेहद महत्वपूर्ण है। कुमार अम्बुज की कविता 'पिताओं के बारे में कुछ छूटी हुई पंक्तियाँ' आंखों में आंसू भर गयी। मदन केशरी की कविता कुछ सुझाती है। महाश्वेता जी के बारे में जान सका। आपको इसके लिए शुभकामनाएं।

'हिन्द स्वराज' अभी अभी पढ़ा था। इस पर बरनवाल जी के विमर्श ने हमें पाठ की समझ में और सक्षम बनाया। कृष्ण मोहन श्रीमाली जी का तो नाम ही काफी है। गजेन्द्र उबारन गिरि, इलाहाबाद, उ.प्र.

तद्भव 20 में कहानी 'गणतंत्र' पढ़ी। मेरी बधाई स्वीकार करें। एक बेहतरीन और सार्थक रचना को पढ़ कर जो खुशी मिली है, उसे आपसे भी साझा करना चाहता हूँ। अपनी बात कहने के लिए तद्भव के इसी अंक में प्रकाशित देवीप्रसाद मिश्र की कविता 'निजामुद्दीन' की ये पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहता हूँ— *हिन्दी में अलग धलग पड़ी विपत्ति की एक कहानी और एक कविता सारे विशेषांकों पर भारी पड़ जाये*

तो सच यही है कि यह कहानी कई भारी भारी विमर्शों और बहसों से कहीं अधिक मार्मिक और तीखी है। सत्ता, व्यवस्था और पूरे तंत्र की संवेदनशून्यता, दिखावे, अहंकार और भारत में ही बस रहे कई कई भारत से उसके घातक अपरिचय और इन सबके ऊपर एक लिजलिजी किस्म की उत्सवधर्मिता; कहानी इन सब पर सवाल खड़े करती है।

हिन्दी में इन दिनों फैशन चल पड़ा है कि कहानीकार अपनी कहानी पर कम और अपने ज्ञान पर अधिक विश्वास करता है, कहानी में कहानीपन की कीमत पर कहानीकार का ज्ञान अधिक दिखायी पड़ता है। पाठक अभिशप्त होता है उनके ज्ञान से लाभ उठाने के लिए, ऐसे में यह कहानी इस शर्त की बुनियादी रक्षा करती हुई कि पहले उसमें कहानी होनी चाहिए; अपनी बात पूरी तरह रखने में सफल होती है। बहुत आसानी से एक दूसरी प्रवृत्ति यह भी लक्ष्य की जा सकती है कि हर दूसरा कथाकार निर्मल जी या विनोदकुमार शुक्ल ही बनना चाहता है। अपनी औसत पाठक्रीयता के आधार पर इतना ही कहूंगा कि ये चीजें थोड़े वक्त के लिए भले ही आकर्षित करें, पर दीर्घजीवी नहीं होती हैं।

गनीमत है कि दुल्लो और हाथी को गोली नहीं मारी गयी, हो तो यह भी सकता था; मैं तो यह सोचता हूँ कि अगर ऐसा होता तो रमजान को आई.एस.आई. का एजेण्ट सिद्ध करते कितना वक्त लगता!

रघुवीर सहाय की कविता अधिनायक याद आ रही है। आशुतोष पार्थश्वर, हाजीपुर, बिहार

रवीन्द्र नाथ ठाकुर के जीवनवृत्त पर इतनी निकटता से महाश्वेता देवी ने अपने शब्दों के बाण बिखरने का अप्रतिम प्रयास किया है, जो अविस्मरणीय है। संतोष कुमार चतुर्वेदी जी की दोनों कविताओं में कविता 'पानी का रंग' वास्तव में बड़ी ही हृदयस्पर्शी मौलिकताप्रधान लगी। विशेषतः अंतिम पंक्तियाँ। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध मीडियायानी वर्तिका नंदा जी की कविताएं एक से बढ़ कर एक लगीं। उन्होंने कविता 'खुशामदीद' में बड़ी ही भावनात्मक दृष्टि से दो उच्चवर्गीय (अमीर) व निम्नवर्गीय (गरीब) घरानों की बेटियों की परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए एक संदेश भी देना चाहा है। कविता 'बहुरानी' में भी एक अमीर घर की बेटि और एक गरीब की बेटि जिसका पांव बिवाइयों से भरा है, की तुलना करते हुए बड़ी ही अद्वितीय भावना का शाब्दिक तानाबाना बुना है। कुमार अम्बुज की पांच कविताओं में 'पिताओं के बारे में कुछ छूटी हुई पंक्तियाँ' और 'आदमी जो बनना चाहता था' अत्यंत विलक्षण व यथार्थपरक लगीं।

इसी प्रकार नरेन्द्र जैन की पांच कविताओं में 'घास का रंग' और 'थोड़ी बहुत मृत्यु' में सामाजिक सत्यता का अनुसरण हुआ। कामेशमणि पाठक, अयोध्या, उ.प्र.

तद्भव मिला। बद्री का लेख अच्छा है। विमल कुमार, नयी दिल्ली

सम्पादकीय में आपने बहुत ही महत्वपूर्ण विषय उठाया है। पूरे संसार में सरकारें गवर्नेंस के नाम पर नागरिकों के नितांत निजी स्पेस में घुसपैठ करके उन्हें आतंकित कर रही हैं। कागजों की बेड़ियों में नागरिकों को जकड़ रही हैं। जनतंत्र की नौटंकी में सरकार राजा है और प्रजा उसकी गुलाम जिसे अर्नगल, अवांछित नियमों, कानूनों और कागजों की भूलभुलैया में भटकाने रखना राजा का धर्म है। प्रताप सिंह, राठौर, अहमदाबाद, गुज.

यह अंक भी अपनी परम्परा का निर्वाह करते हुए महत्वपूर्ण होने का गौरव संभाले हुए है। 'हिन्द स्वराज' का शताब्दी वर्ष होने के कारण विमर्श चल रहा है। तद्भव क्यों पीछे रहे। तद्भव जैसे भी पीछे रहने की आदत वाला नहीं है। यहां पर हिन्द स्वराज की गांधी जी द्वारा तैयार संकल्पना पर विशदता से विचार किया गया है। साथ ही गत एक सौ वर्षों की स्थितियों, परिस्थितियों के साथ साथ वर्तमान तक को भी अप्रत्यक्षतः संवेदित किया गया है। नारी विमर्श को समझाने के लिए दो लेख इसीलिए महत्वपूर्ण हैं कि ये भारतीयता के अतीतकाल को खोल कर सामने रख रहे हैं। इन दोनों लेखों को पढ़ने पर साफ हो जाता है कि भारतीय नारी विमर्श का आधार पश्चिम में तलाशने वाले अपने घर की भी कुछ खोज खबर रख लें तो उनको दूसरों का मुंह ताकना नहीं पड़ेगा। इस अंक का सबसे महत्वपूर्ण लेख कृष्ण मोहन श्रीमाली का है। तार्किकता और प्रमाण का संयोजन इस लेख को प्रभावशाली, विश्वसनीय और महत्वपूर्ण बनाता है। कहानियां और कविताएं पत्रिका की प्रकृति को संभाले हुए हैं। 'आत्म और आत्मचरित' लेख बहुत अच्छा है। हिन्दी का साहित्य संसार विशद एवं विविधता से परिपूर्ण है। कई ऐसे साहित्यकार तहों के बीच दबे रह गये हैं जिनको बाहर निकालना ही चाहिए। तुलसी राम की मुर्दहिया की किस्त है ही जिसका आगे भी इंतजार रहेगा। समीक्षाएं और लम्बी कहानी तो इस पत्रिका की जैसे जान ही हैं। *हरपाल सिंह 'अरुण', मुजफ्फरनगर उ.प्र.*

तद्भव-20 वाकई इस अवधि में प्रकाशित अन्य पत्रिकाओं से बीस है। सम्पादकीय अत्यंत विचारोत्तेजक है तथा इसमें सत्ता एवं भूमंडलीकरण की अच्छी पड़ताल है। सम्पादकीय में समय का खयाल रखना बेहद जरूरी है, नहीं तो पत्रिका 'बैंक डेटेड चेक' की तरह लगने लगती है। यह सर्वविदित है कि तद्भव अर्द्धवार्षिक है तथा इस पर जुलाई 2009 अंकित भी है। अतः सम्पादकीय में प्रधानमंत्री के 15 अगस्त 2009 के 'व्याख्यान' का उल्लेख उचित नहीं लगता। भविष्य में जो शोधार्थी पत्रिका का इस्तेमाल करेंगे, उन्हें ये बातें खटकेंगी। सम्पादकीय को लम्बा करते हुए थोड़ी साहित्यिक चर्चा भी जरूरी लगती है। महाश्वेता देवी का संस्मरण तो अच्छा लगा ही, वीरेन्द्र कुमार बरनवाल, सुवीरा जायसवाल, बट्टी नारायण आदि के लेख भी अनुभव एवं ज्ञान के क्षेत्र को विस्तार देने वाले हैं। तद्भव में प्रकाशित कहानियों की चर्चा तो एकेडमिक हलकों में होती ही है। 'नया ज्ञानोदय' के 'प्रेम महाविशेषांक-3' में वर्तिका नंदा की कविता 'पैदाइश' प्रकाशित है। यह 'तद्भव-20' में पहले प्रकाशित हुई कि 'नया ज्ञानोदय' में, कहना मुश्किल है। सम्पादक को ही नहीं स्वयं रचनाकार को भी रचना के पुनर्प्रकाशन से बचना चाहिए। 'मुर्दहिया' को पुस्तक रूप में देखने के लिए पाठक समुदाय व्यग्र है। राजेश जोशी के गद्य का कहना ही क्या।

'को बड़ छोट कहत अपराधू' मानते हुए भी तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि 'विशेष' कॉलम के अंतर्गत प्रकाशित राजकुमार का आलेख 'आत्म और आत्मचरित' निस्संदेह पत्रिका की एक विशेष उपलब्धि है। राजकुमार ने वैयक्तिकता के विकास का अध्ययन ऐतिहासिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में करने की पहल की है। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्थापित किया है कि व्यक्ति की अवधारणा का विकास सिर्फ पश्चिम की विशेषता नहीं है। वैयक्तिकता की प्रवृत्ति भारत में भी विद्यमान रही है। समूचा भक्तिकालीन साहित्य वैयक्तिकता के गुण से ओतप्रोत है। यह अलग बात है कि भक्तिकाल में कवि की वैयक्तिकता 'यूटोपिया' में दिखायी देती है। भारतीय वैयक्तिकता एवं पश्चिमी व्यक्तिवाद में भी अंतर दिखाने की सफल कोशिश राजकुमार ने की है। पश्चिमी व्यक्तिवाद ने अपने विकास की कीमत भारी नरसंहार कर वसूल की है। जी.एन. देवी एवं आनंद कुमार स्वामी के मतों की अच्छी खबर लेने के साथ ही वैयक्तिकता के विकास के लिए उग्रता, हिंसा और वर्चस्व को अनिवार्य समझने वालों को भी खूब खरी खोटी सुनायी है। रचनाओं को सही संदर्भ में न समझना रचनाओं के साथ अन्याय है। राजकुमार ने पूर्व औपनिवेशिक आधुनिकता या प्रारम्भिक आधुनिकता के संदर्भ में ही 'अर्द्धकथानक' के महत्व को समझने पर बल दिया है। शशि कुमार सिंह, वाराणसी, उ.प्र.

सुवीरा जायसवाल और कृष्ण मोहन श्रीमाली जैसे महत्वपूर्ण इतिहासकारों के अद्वितीय लेख हिन्दी पत्रिकाओं में तद्भव में ही मिलते हैं इससे तद्भव के महत्व का पता चलता है। राजकुमार के जो दो लेख आपने छापे हैं, उससे लगता है कि हिन्दी को एक नया गम्भीर अध्येता और प्रखर आलोचक मिल गया है। शशांक की कहानी बहुत दिनों बाद पढ़ने को मिली है लेकिन बहुत अच्छी। उनके गद्य का क्या कहना। राजेन्द्र रतन, अलवर, राज.

तद्भव का अंक-20 पढ़ा जो पिछले अंकों की तरह ही हर दृष्टि से उत्कृष्ट है। प्रतिक्रिया कहां से दूँ यह भी समझ में नहीं आ रहा है। स्वभावतः कविता पहले पढ़ी। देवी प्रसाद जी की खंडों में बंटी कविता पढ़ी। खंड-2 कुछ अच्छा लगा। नरेन्द्र जैन, कुमार अम्बुज, मदन केशरी, संतोष कुमार चतुर्वेदी, वर्तिका नंदा सभी की कविताएं अच्छी लगीं। इनमें कुछ कविताओं में एक समस्या नजर आयी, बाजारवाद पर लेखक संगठनों का रोना। कविता को इनके शब्दतः कथन से बचाया जाना चाहिए। सारे स्तम्भ अच्छे लगे। बंदी नारायण का आलेख अच्छा लगा। सच्चिदानंद विशाख, पटना, बिहार

आपके सम्पादकीय से ये स्पष्ट नहीं होता कि राज्य दमनकारी है अथवा नहीं। आपने दोनों तरफ के तर्क दिये हैं। साहित्य तो प्रतिपक्ष में है ही चाहे राज्य दमनकारी हो या न हो। महाश्वेता देवी की आत्मकथा सृजनात्मक आनंद लिये हुए तो है ही, एक ऊँचाई का स्पर्श निरंतर बना रहता है। हिन्द स्वराज पर इधर बहुत आ रहा है पर वीरेन्द्र कुमार बरनवाल का कोई जवाब नहीं है। इस आलेख की खूबसूरती यह है कि वे सीधे हिन्द स्वराज के केन्द्रीय कथ्य पर नहीं आते। संदर्भों को खोलते हैं, उनकी अंतर्कथा कहते हैं। चीजों को साफ करते हैं और अंत में हिन्द स्वराज हमारे सम्मुख रख देते हैं। शशांक की कहानी 'तैयारी' में कहानी की तैयारी है, कहानी नहीं है। राजेन्द्र चंद्रकांत राय ने पशुओं के प्रतीकत्व द्वारा गणतंत्र चित्रित किया है इसके सुखांत होने की उम्मीद न थी, दुखांत की आशंका थी। लेखक ने तृतीय अंत किया है। वर्णन विश्वसनीय और प्रामाणिक है। गणतंत्र हमारी रँगों में नहीं है, उत्सव में है। उत्सव की चकाचौंध में है। चौधियाये हुए आम आदमी की त्रासदी है गणतंत्र। 'रहने की जगह' कहानी तैयारी से पीछे हैं। बंदी नारायण के लेख पर आपने बहस आमंत्रित की है, लेकिन यह उतना उर्वर नहीं बन पाया है। बहस तो फिर भी आपको मिल जायेगी लेकिन लोग अपनी कहेंगे, बंदी नारायण की नहीं। देवी प्रसाद मिश्र की कविता निजामुद्दीन को दिनकर की दिल्ली का समकालीन संस्करण कह सकते हैं। या उसी क्रम में इसे रखा जा सकता है। डॉ. तुलसी राम की मुर्दहिया में वो बात नहीं जो महाश्वेता देवी में है। पर दलित आत्मकथाओं में इसे ऊँचा आसन दिया जा सकता है। राजेश जोशी अच्छे कवि हैं पर उनका सब कुछ अच्छा लगे यह आवश्यक नहीं। पागलों पर लिखना एक समझदारी हो सकती है पर यह एक किस्म का पागलपन ही है। गौरव सोलंकी की लम्बी कहानी 'ब्लू फिल्म' पढ़ कर कृष्ण बलदेव वैद का स्मरण स्वाभाविक है। वह इसलिए कि इसमें भी उनकी सी निरर्थक सार्थकता या सार्थक निरर्थकता है। समीक्षाएं मैंने अभी पढ़ी नहीं हैं, मैं अब उन्हें ही पढ़ूंगा। तात्पर्य यह कि तद्भव का यह वृहद अंक अपने में काफी कुछ ऐसा भी समेटे हुए है जिसे छोड़ा जा सकता है। हितेश व्यास, कोटा, राज.

तद्भव-20 दो दिनों पूर्व प्राप्त हुआ। कवर आकर्षक है। मुझे वैदिक ग्रंथों में नारी की दशा सम्बंधित जानकारी की तलाश थी जो सुवीरा जायसवाल से मिल जायेगी। देवी प्रसाद मिश्र कविता में लगातार प्रयोग कर रहे हैं। हिन्द स्वराज तथा महाश्वेता देवी जी की आत्मकथा का अंश भी रोचक व प्रभावी हैं। घनश्याम त्रिपाठी, भिलाई नगर, छ.ग.

अद्भुत है यह अंक। इसके एक एक स्तम्भ मील के पत्थर हैं। आत्मकथा मुर्दहिया डॉ. तुलसी राम केवल आत्मकथा ही नहीं है समाज कथा और संस्कृति कथा भी है, जो बहुत ही व्यापक ढंग से समाजशास्त्रीय दृष्टि से लिखी जा रही है। साथ ही राजकुमार जी का आलेख भी संदर्भवान है। इस अंक की कहानियां अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और संवादधर्मी भी। 'ब्लू फिल्म' गौरव सोलंकी, 'तैयारी' शशांक, 'गणतंत्र' राजेन्द्र चंद्रकांत राय और 'रहने की जगह' रामकुमार तिवारी गहरी संवेदना को अभिव्यक्त करती हैं तो दूसरी ओर आज के संकटपूर्ण जीवन को भी बता जाती हैं। कविताएं विशेषकर देवी प्रसाद मिश्र, नरेन्द्र जैन, वर्तिका नंदा अंतर्मन को छू गयीं। आज के विमर्शवादी दौर में प्रकाशित निबंध विमर्श (नारी) को आयाम देते हैं। ये निबंधकार सुवीरा जायसवाल, शालिनी शाह बधाई के पात्र हैं। समीक्षाएं विशेष महत्व की हैं। यह अंक तद्भव को विशेष ऊँचाई प्रदान करता है। आजकल वीरेन्द्र यादव, मैनेजर पाण्डेय के लेख नहीं आ रहे हैं तथा काशीनाथ सिंह भी लगभग चुप हैं क्यों? तद्भव तो खामोशी तोड़ने वाली पत्रिका है। डॉ. अरविन्द कुमार सम्बल, आजमगढ़, उ.प्र.

मुर्दहिया पढ़ा, आजादी के पश्चात भी बड़ी दुर्गति है। दलितों की अनेक आत्मकथाएं दुर्गति वर्णन हैं। सुगति के लिए भी लिखा जायेगा। तथाकथित दलितों को संघर्ष हेतु लिखना चाहिए। यशवंत मेश्राम, राजनादगांव, छ.ग.